महाराज अग्रसेन

और अग्रवाल समाज

–निरंजन लाल गौतम

श्री जे० आर० जिन्दल--प्रधान

जिनके नेतृत्व में

अखिल भारतीय अग्रवाल

महासभा (पंजीकृत) देहली-३२

प्रगति पथ पर अग्रसर हैं

१—अग्रवाल जगत के लिये यह कितने गौरव की बात है कि इस महा सभा की स्थापना भारत के ऐतिहासिक महापुरुष एवं राष्ट्रीय की विभूति महात्मा गान्धी के मुंह बोले पुत्र सेठ जमनालाल बजाज ने सन् १९१८ ई० में की थी और समाज सुधार, एवं जागृति का बिगुल बजाया था।

२—यह महाराजा अपनी स्थापना से लेकर आज तक किसी भी व्यक्तिवाद, परिवारवाद एवं क्षेत्रवाद से दूर रहते हुए, विशुद्ध रूप से प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों पर चलती आ रही है। अतः यह महासभा आपकी है, मेरी है और सब की है। देश के नगर-नगर और क्षेत्र-क्षेत्र में इसका गौरवपूर्ण इतिहास फैला हुआ परिलक्षित है।

३—इस महासभा को महात्मा गान्धी का आशीर्वाद प्राप्त था।

४—इस महासभा ने हिन्दी प्रचार, कुरीति निवारण, समाज सुधार एवं समाज को राष्ट्रीय विचार एवं दृष्टिकोण प्रदान किया।

५—इसी महासभा की प्रेरणा से सन् १९३८ में अग्रवाल जाति का इतिहास अग्रवाल समाज के सम्मुख आया और अग्रोहा तथा महाराजा अग्रसेन को विश्व ने जाना।

६—आज अग्रोहा में जो भी निर्माण कार्य चल रहा है और समाज में जो भी जागृति आई है उसके पीछे इसी महासभा की प्रेरणा एवं क्रियात्मक सहयोग समाज के कार्यकर्ताओं को उपलब्ध हुआ है।

सेठ जय भगवान जी गर्ग, शाहदरा, देहली-३२

एकेनापि सुपुत्रेण पवित्र गुण शालिना।
सुरभि क्रियते गोत्रं चन्दने नेव काननम्॥

गुणवान एवं आचरणवान एक पुत्र से ही सम्पूर्ण परिवार उसी प्रकार सुशोभित एवं विख्यात हो जाता है जैसे चन्दन का एक वृक्ष सम्पूर्ण वन को सुगन्धित कर देता है।

राजाभोज का उपर्युक्त वचन श्री जयभगवान जी गर्ग पर पूर्ण रूपेण चरितार्थ होता है। आपने अपनी व्यापारिक प्रतिभा, लगन, कठोर परिश्रम, सदाचरण एवं दानवृत्ति के बल पर अपने परिवार को तो ऊंचा उठाया ही है, अपने सभी सम्बन्धियों के लिए उन्नति के द्वार खोले हैं।

आपका जन्म २८ नवम्बर १९३८ ई० में श्री ला० गिरिलाल जी गर्ग

के घर लोहारी (मेरठ) में हुआ था। आप अपनी प्राथमिक शिक्षा पूर्ण कर १० वर्ष की आयु में ही देहली आ गये और अपनी सूझ-बूझ और लगन से सन् १९५९ ई० में २०३ तिलक बाजार, देहली-६ में सर्वश्री गिरिलाल ओमप्रकाश अग्रवाल के नाम से आढ़त की गद्दी स्थापित की।

गतवर्षों में आपके पुत्र श्री शिव कुमार जी ने शिव मैटल इंस्ट्रीज, ४२१ फ्रेंड्स कालोनी, शाहदरा में एक उद्योग शाला की स्थापना करके समृद्धि के नये स्रोत खोले हैं।

सेठ जी की धर्म पत्नी श्रीमती माया देवी पतिपरायणा एवं धार्मिक विचारों की महिला हैं। इनके तीन पुत्र तथा तीन पुत्रियां कुल की शोभा हैं। इनके पिताश्री गिरिलाल जी ग्राम पंचायत के प्रधान रहे हैं और कन्या पाठशाला, लोहारी (मेरठ) इनका कीर्तिमान है।

सरल स्वभाव के एवं दानशील सेठ जय भगवान जी धार्मिक तथा सामाजिक संस्थाओं में अपना क्रियात्मक योगदान देते रहते हैं। आप सनातन धर्म सभा तथा आर्य समाज की शिक्षा संस्थाओं को मुक्त हस्त से दान देकर संरक्षण देते रहते हैं। दान की इसी शृंखला में "महाराज अग्रसेन और अग्रवाल समाज" पुस्तक का अष्टम संस्करण इनके आर्थिक सहयोग से प्रकाशित हुआ है।

सम्पर्क सूत्र—सेठ जयभगवान गर्ग
सर्वश्री गिरिलाल ओमप्रकाश अग्रवाल
२०३, तिलक बाजार, देहली-६

महाराजा अग्रसेन
और
अग्रवाल समाज

अखिल भारतीय अग्रवाल महासभा (रजिस्टर्ड) देहली द्वारा
लेख प्रतियोगिता में सर्वश्रेष्ठ घोषित एवं पुरस्कृत

□

श्री जय भगवान जी गर्ग, शाहदरा निवासी के
आर्थिक सहयोग से प्रकाशित

लेखक :—
वैद्यश्री निरंजन लाल गौतम

□

प्रकाशक :—
अखिल भारतीय अग्रवाल महासभा (पंजीकृत)

□

प्राप्ति स्थान :—
वैद्यश्री निरंजन लाल गौतम
महामंत्री
अखिल भारतीय अग्रवाल महासभा (पंजीकृत)
७/२८, ज्वाला नगर, गौतम मार्ग, शाहदरा, देहली-३२

अष्टम संस्करण १००० | (सर्वाधिकार लेखकाधीन सुरक्षित) अग्रसेन सं० ५१४२ सं० २०३८ वि० | मूल्य एक प्रति एक रुपया

अनिल प्रिंटर्स, के-८, देहली-३२

शुभ कामना

अखिल भारतीय अग्रवाल महासभा (पंजीकृत) देहली की ओर से सन् १९७५ में "महाराज अग्रसेन और आज का समाज" विषय पर खुली प्रतियोगिता हेतु लेख आमन्त्रित किये गए थे। इस प्रतियोगिता में भाग लेने वाले विद्वानों में से श्री निरंजन लाल गौतम का नाम उल्लेखनीय है।

प्राप्त लेखों की छानबीन के लिए अखिल भारतीय अग्रवाल महासभा की निर्णायक उपसमिति की बैठकों ने श्री पं० विष्णु दत्त कविरत्न को परामर्श दाता के रूप में सम्मिलित किया गया था। निर्णायक उपसमिति के सदस्यों ने सभी प्राप्त लेखों का आद्योपान्त अध्ययन करके तथा विचार विनिमय के पश्चात् सर्व सम्मति से श्री निरंजन लाल जी गौतम के लेख को सर्वश्रेष्ठ घोषित किया और इन्हें सम्मानित करने के लिए १०१) का पारितोषिक देने का भी निर्णय किया।

मुझे हार्दिक प्रसन्नता है कि विद्वान् लेखक ने अग्रवाल जाति के इतिहास का मन्थन कर नवनीत रूप में ऐसा उपयोगी लेख समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया है। ऐसे उपयोगी लेख को प्रत्येक अग्रवाल सभा तक पहुंचाने की दिशा में 'महाराज अग्रसेन और अग्रवाल समाज' लघु पुस्तक का प्रकाशन लेखक का सराहनीय प्रयास है। मुझे यह देखकर हार्दिक प्रसन्नता हुई है कि इस पुस्तक को अग्रवाल समाज ने बड़े प्रेम से अपनाया है, फलतः इसका अष्टम संस्करण पाठकों के हाथ में है। अग्रवाल समाज इस प्रकाशन का दिल खोलकर स्वागत करेगा, ऐसी आशा है।

मेरी शुभ कामनाएं इस प्रकाशन के साथ पूर्ववत् हैं।

अग्रसेन जयन्ती — जे० आर० जिन्दल
सन् १९८२ — प्रधान
अखिल भारतीय अग्रवाल महासभा (पंजीकृत) देहली-३२

महाराजा अग्रसेन और अग्रवाल समाज

***

जातियों की उत्पत्ति

"महाराजा अग्रसेन और अग्रवाल समाज" विषय को समझने के लिए भारत में जातीय इतिहास के क्रमिक विकास को समझना परम आवश्यक है, क्योंकि भारत में जातियों का इतिहास देश और विदेश में बहुत समय से मनन, अध्ययन, और चिन्तन का विषय रहा है और इसने यहाँ के समाज में एक नई व्यवस्था को जन्म दिया है। आइये यहां हम पहले उसी जातीय इतिहास के क्रमिक विकास पर विचार करें।

सृष्टि के प्रारम्भ में मानव मात्र का केवल एक वर्ग विशेष था। तब वर्तमान जातियाँ न थीं अपितु जिसे ब्राह्मण कहा जाता था उसका अर्थ विद्वान् था, किसी जाति का बोधक न था। ऋग्वेद संसार के पुस्तकालय में प्राचीनतम ग्रन्थ है और उसकी १० हजार ऋचाओं में से किसी से भी जातीय शब्द का बोध नहीं होता। इसके विपरीत उत्तर काल की कोई ऐसी पुस्तक नहीं जिसमें जाति भेद का वर्णन न हो। हाँ वैदिक काल में वर्ण शब्द का प्रयोग उस समय के समाज में विद्यमान मनुष्यों के दो भेदों— आर्य और अनार्य के लिए हुआ है (ऋग्वेद ३/३९/४)। यदि कहीं क्षत्रिय,

ब्राह्मण, विशः और शूद्र का प्रयोग हुआ है तो उसका तात्पर्य केवल मनुष्य विशेष के गुणों से है। जैसे ब्राह्मण शब्द किसी जाति का बोधक न होकर केवल मननशील विद्वानों के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार क्षत्रिय शब्द से तात्पर्य 'बलवान' और 'रक्षक' से है (ऋग्वेद ६४/२ तथा ७/८६/१) और विप्र शब्द का प्रयोग बुद्धिमानों के लिए हुआ है जिसका प्रयोग आज ब्राह्मण के लिए किया जाता है (ऋग्वेद ८/११/६)

मेरे उपर्युक्त कथन का तात्पर्य यही है कि आज से लगभग ६००० वर्ष पूर्व समाज में जातियों का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। सभी लोग उस समय मिलकर रहते थे और वैदिककाल के अन्त तक भारतवर्ष में यही क्रम चलता रहा। (पी० एन० बोस कृत हिन्दू सिविलाइजेशन अण्डर ब्रिटिश रूल भाग-२)

चार वर्ण

किन्तु आगे चलकर जातीयता का बीजारोपण उस समय हुआ जबकि मानव समाज में पहली बार ब्राह्मण वर्ग एक पृथक् समूह रूप में प्रकट हुआ। प्रारम्भ में केवल ब्राह्मण ही थे। इसका प्रमाण बाल्मीकी रामायण (उत्तरकाण्ड अध्याय ७४) में इस रूप में दिया है कि सतयुग में केवल ब्राह्मण ही तपस्या करते थे और क्षत्रियों की उत्पत्ति त्रेता युग में हुई तथा द्वापर में अन्य जातियां बनीं। इस उल्लेख का तात्पर्य भी यही है कि धर्माध्यक्ष रूप में प्रारम्भ में केवल ब्राह्मण समाज था किन्तु जब शत्रुओं से रक्षा हेतु बलवानों की आवश्यकता हुई तो क्षत्रियों की उत्पत्ति अनिवार्य हो गई। जब इन दोनों वर्णों के भरण-पोषण के लिए व्यक्तियों की आवश्यकता हुई तो उनका विशः वर्ण बन गया और इन तीनों वर्णों का सेवाकार्य शूद्रों को सौंपा गया (आर० सी० दत्त कृत हिस्ट्री आफ सिविलाईजेशन इन एंशियेन्ट इण्डिया भाग १ पृष्ठ संख्या १५४) हमारे इस कथन की पुष्टि में वृहदारण्यक का मंत्र १/४/११ उल्लेखनीय है जहां स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सृष्टि के प्रारम्भ में एकमात्र ब्राह्मण वर्ण

था और जब यह जाति अकेले न चल सकी तो उसके लिए क्षत्रियों की सृष्टि हुई।

गुण कर्म से

उपर्युक्त उदाहरणों से यह भी प्रकट होता है कि वर्णों की उत्पत्ति कर्म से हुई थी। जन्म से न कोई ब्राह्मण था, न कोई क्षत्रिय न कोई विशः, न शूद्र। (यजुर्वेद २३/२, महाभारत शांतिपर्व १८६/२७) वर्ण का निर्णय गुण, कर्म और स्वभाव से होता था (महाभारत शान्तिपर्व १९८/२/८, अनुशासन पर्व १४३/५१ आदि) कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छानुसार अपना व्यवसाय चुन सकता था और बदल भी सकता था किन्तु व्यवसाय के साथ उनका वर्ण भी बदल जाता था (ऐतरेय ब्राह्मण ४/१/१९०)। इस सन्दर्भ में उपनिषदों में अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं—जैसे महामुनि सत्यकाम जाबाल दासी के पुत्र थे, ऐतरेय मुनि इतरा शूद्रा के पुत्र थे, दीर्घतमा ऋषि शूद्र दासी उशज के पुत्र थे। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण महाभारत वन पर्व में भरे पड़े हैं। स्वयं महाभारत के रचियता वेदव्यास मुनि केवट पुत्री की जारज सन्तान थे और इनके पिता पाराशर का जन्म चाण्डालनी के घर हुआ था, वशिष्ठ गणिका के पुत्र थे। तपस्वी विश्वामित्र का जन्म क्षत्रिय वंश में हुआ था। ब्रह्मज्ञान के उपदेष्टा क्षत्रिय भी थे। जनक, अजात शत्रु, अश्वपति, केकय, प्रवाहण, जेवालि आदि अनेक ब्रह्मवेत्ता क्षत्रिय राजे हुए हैं जिनसे ब्राह्मण ऋषि भी ब्रह्म विद्या सीखने आते थे (वृहदारण्यक उपनिषद ३/१/१ तथा ६/२/१)।

एक ही परिवार में भिन्न व्यावसायी भी थे यथा ऋषि पुत्र अंगिरस निज परिचय देते हुए कहते हैं कि :—

"मैं स्तवन रचना करता हूं, मेरे पिता वैद्य हैं और माता पिसनहारी।"
(ऋग्वेद ९/११/३)

इन सब उदाहरणों के उल्लेख से हमारा तात्पर्य यही है कि उत्तर काल में योग्यता और बुद्धि से कर्म की प्राप्ति होती थी और कर्म से वर्ण

का निर्धारण होता था। (शतपथ ब्राह्मण ११/६/२/१० तेतरेय संहिता १/६/१) इस कथन की पुष्टि में बौद्ध कथा साहित्य का एक सुन्दर उल्लेख है :—

न वाचा ब्राह्मणो होति न वाचा होति अब्राह्मणो।
कम्मना ब्राह्मणो होति। कम्मना होति अब्राह्मणो ।।

कहने से न कोई ब्राह्मण होता है और न कोई अब्राह्मण होता है अपितु कर्म से ही ब्राह्मण होता है और कर्म से ही अब्राह्मण होता है।

वैदिक काल में विशः शब्द का प्रयोग पृथ्वी पर बस गई सम्पूर्ण जाति के लिए होता था किन्तु धीरे-२ जब ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र वर्णों की स्वतन्त्र सत्ता बन गई तो शेष जनता के लिए विशः शब्द का प्रयोग होने लगा (ऋग्वेद ८/३५/१७-१८) यही विशः शब्द विश्य और वैश्य में बदल गया। सबसे पहले वैश्य शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के दशं मंडल के पुरुष-सूक्त में हुआ है। इस वर्ग के प्रमुख कर्म खेती, पशुरक्षा, व्यवसाय और हस्तकलाओं का निर्माण तथा यज्ञ करना आदि थे।

वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था के साथ साथ ही भिन्न-भिन्न कर्मों के आधार पर कुम्हार, केवट, ग्वाला, धीवर, नाई आदि जातियां भी बन गईं थीं। ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों में अनेकों उपवर्गों का जन्म हो चुका था। आगे चलकर आवश्यकतानुसार तथा परिस्थितिवश कार्यों के विस्तार के साथ-साथ कर्मी वर्ग ही जातियों में बदल गए।

गणों की स्थापना

समाज में बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार मुनियों ने विविध सूत्र ग्रन्थों की रचना की और बढ़ते हुए समाज और उगते हुए जाति समूहों के लिए नियम और व्यवस्थाएं निर्धारित कीं। इन सूत्र ग्रन्थों में गौतम कृत धर्म सूत्र का बड़ा महत्व है। गौतम धर्म सूत्र व्यवस्था १०/४६ तथा १०/२०/२१ के अनुसार एक ही व्यवसाय या कार्यों में लगे व्यक्तियों का समूह अपना गण बना सकता था। गणों की रक्षा हेतु सेना रखने का

अधिकार इन गणों को था (कौटल्य अर्थशास्त्र ६/२/१) व्यवस्था एवं सुरक्षा सम्बन्धी सभी अधिकारों की मान्यता राज्यों की ओर से होती थी। एक प्रकार से जनपद और गण विदेशों के सिटी स्टेट के रूप थे। अनेकों गण और जनपदों के साथ वैश्य जनपद का वर्णन हमें सर्वप्रथम महाभारत में मिलता है :—

"क्षत्रियोपनिवेशश्च वैश्य शूद्र कुलानि च,
शूद्राभीरश्च दरदः काश्मीरः पशुभिः सह।"
(भूमिपूर्व अध्याय ६/६७)

अर्थात् क्षत्रियों के उपनिवेश तथा वैश्य, शूद्र, आभीर, दरद, काश्मीर तथा पशुपति नाम के जनपद बने।

वैश्य जनपद

हमने ऊपर ऐतरेय ब्राह्मण (४/१/ब्र०) का उल्लेख करते हुए बताया था कि उत्तर काल में प्रत्येक व्यक्ति को उसकी इच्छानुसार व्यवसाय करने तथा आवश्यकतानुसार उसे बदलने की स्वतंत्रता थी किन्तु हारीत मुनि ने व्यक्ति के व्यवसाय परिवर्तन की स्वतन्त्रता छीन ली, विशेषकर वैश्य वर्ग के लिए अपनी व्यवस्था देते हुए बताया कि यदि कोई वैश्य निज कर्म को बदलना चाहे तो ब्राह्मण और क्षत्रियों का कर्म ग्रहण नहीं कर सकता अपितु शूद्र कर्म स्वीकार करे।

दूसरी व्यवस्था में कहा गया है कि वैश्य कर्म के साथ वेदाध्ययन का कोई औचित्य नहीं है। इससे वैश्य वर्ग के वेदाध्ययन के अधिकार का हनन हो गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्राह्मण और क्षत्रियों के गठबंधन के परिणामस्वरूप वैश्यों की वर्ण परिवर्तन और वेदाध्ययन की स्वतंत्रता छिन गई। इस सन्दर्भ में हम स्मृतिकारों की कुछ व्यवस्थाओं का भी उल्लेख यहां करना आवश्यक समझते हैं जिनसे यह प्रकट हो जाएगा कि किस प्रकार वैश्यों के कर्म बदले जाने लगे और वैश्य जाति की धार्मिक एवं सामाजिक स्वतन्त्रता की रक्षा हेतु वैश्य जाति के संगठन परक वैश्य

जनपद की स्थापना हुई जो आगे अग्रोहागणराज्य के रूप में बदल गया।

स्मृतिकारों द्वारा वैश्य कर्म में परिवर्तन का वैश्य समाज पर प्रभाव

स्मृति ग्रंथों में अत्रि स्मृति सर्वाधिक प्राचीन है। इसके अनुसार वैश्यों के लिए निम्नांकित कर्म निर्धारित हुए :—

दानमध्ययन वार्ता यजन चेति वै विशः

(अत्रि स्मृति अध्याय १ श्लोक १५)

अर्थात—१. दान देना, २. वेदाध्ययन करना, ३. व्यापार तथा ४. यज्ञ करना ये चार कर्म वैश्य जाति के लिए थे।

आवश्यकता और बढ़ते कार्यों के अनुसार मनु ने वैश्यों के लिए चार से बढ़ाकर सात कर्म निर्धारित किए :—

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ।।

(मनुस्मृति अध्याय १ श्लोक ९०)

१. पशुओं की रक्षा २. दान देना ३. यज्ञ करना ४. अध्ययन करना। ५.वणिज करना ६. ब्याज लेना ७. कृषि करना।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अत्रि तथा मनु द्वारा निर्धारित कर्मों से वैश्य जाति व्यापार में अग्रसर हो गई। साथ ही नाभारेष्टि, भलन्द वात्सप्रि, माकिल जैसे मंत्रदृष्टा ऋषि भी वैश्य जाति को उपलब्ध हुए जिन्हें वैश्य जाति का प्रवर कहा जाता है। वेदाध्ययन के फलस्वरूप ही समाधि जैसे तपस्वी धनी वैश्य इस जाति में जन्म लेते रहे।

किन्तु आगे चलकर हारीत मुनि ने अपने स्मृति ग्रन्थ में वैश्यों के सात कर्मों में से अध्ययन और यज्ञ करने के दो कर्म कम कर दिए।

गौरक्षां कृषिवाणिज्यं कुर्याद्वैश्योयथाविधि।
दानदेयं यथाशक्या ब्राह्मणानां भोजनम् ।।

(हारीत स्मृति : अध्याय २ मन्त्र ६)

अर्थात वैश्य गोरक्षा, कृषि, वाणिज्य यथाविधि करे एवं यथाशक्ति दान दें तथा ब्राह्मणों को भोजन कराये।

हारीत मुनि की व्यवस्था के अनुसार वैश्यों का वेदाध्ययन एवं यज्ञ करने का अधिकार छिन जाने से वैश्य समाज में ऋषि मुनियों एवं याज्ञिक प्रतिभाओं के आगमन स्रोत रुक गए।

महाभारत काल से लगभग १०० वर्ष पूर्व तो वैश्यों की स्थिति इतनी दयनीय हो गई थी कि—

१. उसके किसी महापुरुष का तत्कालीन किसी भी धर्म ग्रन्थ में कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता।
२. वैश्यों की कर्म बदलने की स्वतन्त्रता छीनी जा चुकी थी।
३. वेदाध्ययन और यज्ञ करने के अधिकार छिन चुके थे।

महाराजा अग्रसेन का अवतरण

ऐसी विषम परिस्थितियों में आज से ५१९७ वर्ष पूर्व, (कलियुग से ८५ वर्ष पूर्व) जबकि जन्मगत जातियों का प्रादुर्भाव हो चुका था, बालक अग्रसेन का जन्म हुआ।

आग्रेय गण-राज्य संस्थापक, अग्रवंश शिरोमणि, अग्रवाल जाति के पितामह, देवतुल्य, प्रातः स्मरणीय महाराजा अग्रसेन का जन्म महालक्ष्मी व्रत कथा के अनुसार प्रताप नगर के वैश्य राजा धनपाल के वंश में राजा वल्लभ के घर मंगसिर वदी पंचमी, दिन शनिवार विक्रम संवत् ३१२९ वर्ष पूर्व (कलयुग से ८५ वर्ष पूर्व—आजकल कलयुग सम्वत् ५०८२ चल रहा है) हुआ था।

नवयुवक महाराजा अग्रसेन से वैश्य जाति की उपर्युक्त हीनावस्था न देखी गई। वे आस्तिक, सबल व बुद्धिमान थे। उन्होंने गौतम धर्म सूत्र का अध्ययन किया और उसकी व्यवस्था १०/४९ तथा १०/२०/२१ के अनुसार (एक प्रकार का कार्य करने वाले अपने संघ बना लें) वैश्य जन पद

की स्थापना की। आगे चलकर वही वैश्य जनपद अग्रोहा गणराज्य में बदल गया।

इनके जीवनकाल में गणराज्य की सीमायें उत्तर में हिमालय से नीचे यमुना तक, पश्चिम में वर्तमान राजस्थान की सीमा को छूते हुए पूर्व में आगरा तथा दक्षिण में अग्रोहा तक पहुंच गई थीं।

इन्द्र से लड़ाई

महाराजा अग्रसेन महाप्रतापी और शक्तिशाली वैश्य जनपद के राजा थे।

अतः इनके शौर्य को देख कर नाग लोक के राजा कुमुद ने अपनी पुत्री माधवी का विवाह इनके साथ कर दिया किन्तु देवों के राजा इन्द्र भी माधवी के साथ विवाह करना चाहते थे अतः महाराजा अग्रसेन के वैभव को देख देवताओं के राजा इन्द्र उनसे ईर्षा करने लगे। फलतः अग्रसेन और इन्द्र में युद्ध छिड़ गया। इन्द्र की शक्ति महान् थी। साथ ही अग्रसेन के राज्य में दीर्घकाल तक वर्षा न हुई। परिणामस्वरूप सूखा के कारण राज्य में अकाल पड़ गया। अतः इन्द्र पर विजय पाने के लिए अग्रसेन ने लक्ष्मी की पूजा शुरू की। अग्रसेन की पूजा से प्रसन्न होकर महालक्ष्मी जी प्रकट हुईं और उन्हें आशीर्वाद दिया तथा इन्द्र पर विजय प्राप्त करने के लिए कोल्हपुर के नागराज महीधर की कन्याओं के स्वयंवर में जाने का आदेश दिया।

महालक्ष्मी की आज्ञा का पालन करके अग्रसेन कोल्हपुर पहुंचे और नागकन्याओं के साथ पाणिग्रहण करने में सफल हुए। नागराज महीधर ने विवाह में अग्रसेन को बहुत सा जनबल, हाथी, रथ, घुड़सवार, पैदल सेना, हीरे मोती, अतुल धन, स्वर्ण और बहुमूल्य पदार्थ दिए। उन दिनों नागराज बहुत बलशाली था अतः ऐसे बलशाली राजा की सहायता प्राप्त कर महाराज अग्रसेन की शक्ति बढ़ गयी। तब इन्द्र ने नारद जी को बीच में डालकर वैश्यों के राजा अग्रसेन से सन्धि कर ली।

गृहस्थाश्रम में प्रवेश

महाराजा अग्रसेन ने इन्द्र से सन्धि होने पर युद्धकार्य से निवृत्त होकर यमुनातट पर महालक्ष्मी की पूजा आरम्भ कर दी। इस पर महालक्ष्मी ने पुनः आदेश दिया कि 'हे राजन ! अपनी तपस्या बन्द करो, गृहस्थाश्रम का पालन करो, क्योंकि यही चारों आश्रमों का आधार है, सभी इस आश्रम की शरण लेते हैं। तुम्हारे वंश के लोग सदैव सुखी रहेंगे। तुम्हारा कुल तुम्हारे नाम से प्रसिद्ध होगा। तुम्हारी प्रजा अग्रवंशी कहलाएगी, तुम्हारे कुल में मेरी पूजा होती रहेगी अतः यह कुल वैभवशाली रहेगा।' यह कहकर महालक्ष्मी अन्तर्ध्यान हो गईं। महाराजा अग्रसेन महालक्ष्मी की आज्ञानुसार अपनी राजधानी प्रताप नगर में पुनः लौट आए।

महाराजा अग्रसेन की जाति

कई लोग महाराज अग्रसेन को क्षत्रिय राजा मानते हैं और कहते हैं कि उन्होंने किसी कारण आगे चलकर वैश्य वर्ण स्वीकार कर लिया था। किन्तु हम इस विचार से सहमत नहीं हैं। इतिहास साक्षी है कि महाराजा अग्रसेन का जन्म कलियुग से ८५ वर्ष पूर्व द्वापर के अन्तिम चरण में वैश्य परिवार में हुआ था। वह काल वर्ण परिवर्तन का न था अपितु उस समय से जातियों का प्रचलन हो चुका था क्योंकि महाभारत में अन्य जनपदों के साथ वैश्य जनपद का भी उल्लेख है।

उस समय दो प्रकार के गणराज्य थे।

१. वार्ता शस्त्रोपजीवी २. राज शास्त्रोपजीवी।

उस समय की परम्परा के अनुसार वैश्यों को वार्ता शस्त्रोपजीवी कहा जाता था जिसका अर्थ है "व्यापार के साथ रक्षा के लिए आवश्यकता पड़ने पर युद्ध करने वाली जाति।" इस गुण के कारण कुछ लोग भ्रम वश हमारा निकास क्षत्रियों में से बताते हैं जो गलत है। वास्तव में महाराजा अग्रसेन जन्म से ही वैश्य जाति के थे और वैश्य गणराज्य के संस्थापक व वैश्यों के संगठनकर्त्ता थे।

निज परिवार

महालक्ष्मी व्रत कथा के अनुसार महाराजा अग्रसेन का निज गौत्र गर्ग का था। उनकी १८ रानियां थीं, ५४ पुत्र तथा १८ पुत्रियां थीं। विस्तृत जानकारी के लिए हमारा "अंग्रोतकान्वय" (अग्रवाल वैश्य जाति का इतिहास) नामक ग्रन्थ का तृतीय संस्करण देखें।

अग्रसेन और अग्रोह का काल निर्णय

महाराज अग्रसेन और अग्रोह गण राज्य की स्थापना के काल निर्णय सम्बन्धी अनेकों भ्रांतियां फैली हुई हैं,और कोई ठोस प्रमाण न होने से यह विषय ऐसे ही 'अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग' कहावत को चरितार्थ कर रहा है। ये भ्रांतियां लम्बी छलांग लगाने तथा अपने को अधिकाधिक प्राचीन सिद्ध करने की भावना से ही निराधार रूप से चली आ रही हैं। यदि कल्पना की लम्बी उड़ान को त्यागकर वास्तविक की गोद में बैठकर और सभी ग्रन्थों को एक ओर रखकर केवल महाभारत के सहारे भी अपने अस्तित्व को खोजने का प्रयत्न करें तो हमारी समस्या सुगमता से हल हो सकती है। महाभारत के अनुसार महाभारत युद्ध से पूर्व लगभग ५० वर्ष की अवधि में पहले पाण्डवों की ओर से नकुल ने फिर नकुल विजय से २५ वर्ष पश्चात् कौरवों की ओर से कर्ण ने भारत पर विजय की थी और अपने काल के किसी भी गण राज्य को विजित करने से नहीं छोड़ा। नकुल विजय का वर्णन महाभारत में निम्न प्रकार मिलता है।

ततो बहुधनं रम्यं गवाढ्यं धन धान्यवत्।
कार्तिकेयस्य दयतं रोहीतक मुपाद्रवत्॥
तत्र युद्धं महच्चासीच्छूरैर्भत्त मयूरकैः।
मरुभूमि स कात्स्न्येन तथैव बहुधान्यकम्॥
शैरीषकं महेत्यं च वशे चक्रे महाद्युतिः।

आक्रोशं चैव राजर्षि तेन युद्धम भून्महत्॥
तान दशार्णात् दस जित्वा च प्रतस्थे, पाण्डुनन्दनः।
(सभापर्व ३५/४/६)

इसके अनुसार नकुल ने रोहतक, मरुस्थल, सिरसा तथा मेहम को जीता था। यहां रोहतक और सिरसा के बीच मरुस्थल है, अग्रोहा या अग्रगण राज्य का वर्णन नहीं हैं।

इसके विपरीत कर्ण विजय का वर्णन महाभारत में इस प्रकार है :—

भद्रान् रोहितकाश्चैव अग्रोयान् मालवान् अपि,
गणान् सर्वान् विनिर्जित्य नीतिकृत प्रहसन्निव॥
(वनपर्व २५४/२०)

यहां भद्र, रोहतक, आग्रेय, मालव गणों के जीतने का वर्णन है इन दोनों प्रसंगों से यह स्पष्ट है कि नकुल और कर्ण विजय की २५ वर्ष की अवधि में ही मरु भूमि में अग्रोह गण राज्य की स्थापना हो गई और यही काल महाराजा अग्रसेन के जन्म काल से सम्बद्ध है, क्योंकि अग्रवैश्य वंशानुकीर्तनम् तथा उरुचरितम् के अनुसार महाराजा अग्रसेन ने २५ वर्ष की आयु में विवाह करके अग्रगण राज्य की स्थापना की थी और अग्रोहा नगर बसाया था।

एक बात और भी उल्लेखनीय है कि कौरवों के शासन काल में अग्रगण राज्य वैभवशाली और शक्तिशाली था तथा अन्य गणों के साथ कर्ण ने आग्रेय गण को भी जीता था। महाभारत युद्ध के पश्चात् ३६ वर्ष ८ मास २५ दिन तक युधिष्ठर ने राज्य किया और कलियुग के प्रथम दिन राज्य त्याग दिया। यह समय हमारे लिए अग्रोहा की स्थापना और महाराज अग्रसेन की जन्म तिथि के लिए कुंजी का काम करता है अर्थात्—

१. कलयुग से ३६ वर्ष ८ मास २५ दिन पूर्व महाभारत युद्ध समाप्त हुआ।
२. महाभारत १८ दिन तक चला।

३. युद्ध के पूर्व २ साल का समय कौरव और पाण्डव सन्धिवार्ता में लगा।

४. इससे पूर्व १४ वर्ष तक पाण्डव बनवास और अज्ञातवास में रहे।

५. इससे २५ वर्ष पूर्व कर्ण ने भारत विजय आरम्भ की थी जिसमें कम से कम १० वर्ष का समय लगना सम्भव है।

६. इस प्रकार कलयुग से लगभग ५० वर्ष पूर्व कर्ण ने अग्रोहा पर आक्रमण किया।

७. कर्ण विजय से पूर्व अग्रोहा निर्माण में १० वर्ष का समय लगना स्वाभाविक है अतः कलयुग से ६० वर्ष पूर्व अग्रोहा की स्थापना हुई और अग्रोहा की स्थापना के पूर्व महाराजा अग्रसेन की आयु २५ वर्ष थी। ऐसी अवस्था में हम निश्चित रूप से कह सकते है कि महाराजा अग्रसेन का जन्म कलयुग से ८५ वर्ष पूर्व हुआ और अग्रोहा की स्थापना कलयुग से ६० वर्ष पहले हुई। यही समय कलयुग से ५० वर्ष पहले कर्ण विजय और उससे २५ वर्ष पहले नकुल विजय का है। जैसाकि हम बता चुके है महाराजा अग्रसेन का जन्म कलयुग से ८५ वर्ष पहले (विक्रम सं० ३१२६ वर्ष पूर्व) हुआ था, यह समय द्वापर का अन्तिम चरण है। यदि राशभाटों की निश्चित तिथि में केवल "द्वापर अन्तिम चरण" कर दें तो महाराजा अग्रसेन की जन्म तिथि "बदी मंगसिर शनि पंचमी द्वापर अन्तिम चरण" बैठती है। अर्थात् मंगसिर बदी पंचमी दिन शनिवार विक्रम सम्वत् ३१२६ वर्ष पूर्व निश्चित होती है।

महाराजा युधिष्ठर ने कलयुग के प्रथम दिन ही राज्य त्याग कर परीक्षित को राज्य सौंप दिया और वे पांचों पांडव हिमालय की ओर चले गये। परीक्षित ने ६० वर्ष तक राज्य किया किन्तु इसी बीच में नागों के साथ उनके सम्बन्ध अच्छे नहीं रह सके और नागों के साथ युद्ध में परीक्षित मारे गए। परीक्षित के पश्चात् जन्मेजय राजा बने और ८४ वर्ष ७ मास २३ दिन तक राज्य किया। इसी बीच में जन्मेजय ने अपनी शक्ति बढ़ाई और नागों का सामूहिक वध किया।

अन्त में आस्तीक मुनि के बीच में पड़ने से नागराज तक्षक की जान बच गई तथा नागवंश के बचे हुए लोग मध्य प्रदेश में विदिशा की ओर चले गये। नागवंश के इस विनाश का महाराजा अग्रसेन पर भी प्रभाव पड़ा और श्वसुर पक्ष के विनाश से दुखी होकर वे ईशोपासना के लिए ब्रह्मसर चले गये जहां ११ वर्ष तक वे जीवित रहे।

हम इससे पहले महाराजा अग्रसेन का जन्म काल कलयुग से ८५ वर्ष पूर्व लिख चुके हैं। अतः इनकी आयु २०४ वर्ष बनती है। पाठक महाराजा अग्रसेन की लम्बी आयु से आश्चर्य चकित न हों। इस संदर्भ में हमें एक बात यह निवेदन करनी है कि आयुर्वेद के इतिहास के आधार पर (आयुर्वेद इतिहास कविराज सूरम चन्द जी कृत पृष्ठ संख्या १०५) प्रत्येक युग के लिए मनुष्य की आयु इस प्रकार वर्णित है—सतयुग में ४०० वर्ष, त्रेता में ३०० वर्ष, द्वापर में २०० वर्ष तथा कलयुग में १०० वर्ष। अतः महाराजा अग्रसेन जैसे आस्तिक, युग निर्माता महापुरुष के लिए २०४ वर्ष की आयु कोई आश्चर्य की बात नहीं है। फिर महाराजा अग्रसेन के समय में वेद व्यास मुनि की आयु ३६० वर्ष और द्रोणाचार्य की आयु ४०० वर्ष थी। इसी प्रकार अनेकों दीर्घजीवी महापुरुष द्वापर काल में विद्यमान थे।

अन्तिम जीवन

उन्होंने कलयुग सम्वत् १०८ में राज त्याग दिया तथा तपस्या के लिए ब्रह्मसर चले गए। वहां तप करते हुए कलयुग सम्वत् ११९ में (विक्रम सम्वत् में २९२५ वर्ष पूर्व) वे अगहन मास की एकादशी के दिन २०४ वर्ष की आयु में ब्रह्मसर तीर्थ पर ब्रह्म में विलीन हो गए।

महाराजा अग्रसेन के जीवन की प्रमुख घटनायें

गृहस्थाश्रम में प्रवेश के पश्चात् गंगा तट पर महालक्ष्मी की उपासना करके महालक्ष्मी के वरदान से जिस स्थान पर इन्द्र को वश में किया गया था वह स्थान हरिद्वार से पश्चिम दिशा में १४ कोस दूर गंगा यमुना के बीच में था वहां महाराजा अग्रसेन ने एक स्मारक बनवाया था।

अग्रोहा निर्माण

इसी बीच उनके पिताश्री का स्वर्गवास हो गया अतः उनकी अस्थिविसर्जन के लिए लोहार्गल तीर्थ पर गए। मार्ग में हरियाणा की वीरप्रसूता भूमि ने उन्हें बहुत प्रभावित किया अतः उन्होंने यहीं अपना नया गणराज्य स्थापित करने का निश्चय किया और कुछ समय पश्चात् महाराजा अग्रसेन ने एक नए नगर की स्थापना की जिसका नाम अग्रोहा रखा। इस नगर का विस्तार १२ योजन में था। उस नगर को बसाने में करोड़ों रुपये खर्च हुए। नगर ४ मुख्य सड़कों द्वारा विभक्त था। प्रत्येक सड़क के दोनों ओर राजमहल के ऊंचे-ऊंचे भवनों की पंक्तियां थीं। नगर में बहुत से उद्यान व कमलों से भरे हुए विशाल तालाब थे। नगर के बीच में देवी महालक्ष्मी का विशाल मन्दिर स्थापित किया गया था, जहां दिन रात लक्ष्मी की पूजा होती रहती थी। उस प्राचीन अग्रोहा नगर के अवशेष (खण्डर) आज भी ६५० एकड़ भूमि में विशाल थेह (टीले) के रूप में दिल्ली से ११३ मील दूर हिसार-सिरसा मार्ग पर

(हिसार से १३ मील दूर) वर्तमान अग्रोहा ग्राम के निकट विद्यमान हैं।

महाराजा अग्रसेन ने अग्रोहा का निर्माण कराके उसमें अपने वंश के लोगों के साथ अन्य वैश्य परिवारों को बसाकर उसे वैश्य गणराज्य की राजधानी बनाया। इनके समय में अग्रोहा में वैश्यों के एक लाख घर थे जो १८ परिवारों में बंटे हुए थे।

अठारह यज्ञों का आयोजन

महाराजा अग्रसेन ने अग्रोहा और अग्रपुर (आगरा) नगर बसाए। अग्रोहा में स्वयं महाराज अग्रसेन १८ गण प्रतिनिधियों के सहयोग से राज्य करते थे और अग्रपुर (आगरा) का राज्य अपने भाई शूरसेन को सौंप दिया था। दोनों भाई सुखपूर्वक राज्य करने लगे तब गर्ग मुनि के परामर्श से महाराजा अग्रसेन ने अपने भाई शूरसेन की सहायता से १८ यज्ञ कराने का निश्चय किया। सब देशों में यज्ञ का निमन्त्रण भेज दिया गया। यज्ञ का समाचार सुनकर मुनि, देवता और विद्वान् यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए अग्रोहा पहुंचे। आतिथ्य सत्कार का सारा प्रबन्ध शूरसेन के हाथ में था और अतिथियों के आतिथ्य में कोई कमी नहीं की गई थी। यज्ञ के अधिष्ठाता महाराजा अग्रसेन बने।

यज्ञ में ब्रह्मा का आसन गर्ग मुनि ने ग्रहण किया। १७ यज्ञ निर्विघ्न हो गए। १८वें यज्ञ से पूर्व रात्रि के समय महाराजा को बोध हुआ और उन्हें यज्ञ में की जाने वाली पशुबलि से घृणा हो गई। उनके मन में हिंसा के प्रति घोर द्वन्द्व चलने लगा। वे सोचने लगे कि "जिस हिंसा से नीच लोग नरक को पाते हैं, मैं उसी हिंसा को प्रोत्साहन दे रहा हूं। वैश्यों का परम धर्म पशुरक्षा है। पशुवध तो महापाप है। मैं यज्ञ में पशुबलि देकर महापाप नहीं करूंगा।"

१८वें दिन प्रातः महाराजा यज्ञ में नहीं पहुंचे, याज्ञिक लोग प्रतीक्षा कर रहे थे अतः महाराज के पास शूरसेन पहुंचे और अपने भाई को घोर चिन्ता में मग्न पाया।

शूरसेन ने हाथ जोड़ कर महाराजा से चिन्ता का कारण जानना चाहा तो अग्रसेन ने कहा, "वैश्यों का कर्तव्य पशुधन की रक्षा करना है, हिंसा करना महापाप है और वैश्यों के लिए निषिद्ध है, मैंने बड़ी भूल की कि यज्ञ में पशुबलि की आज्ञा दी, न जाने इसका क्या फल मुझे भोगना होगा, कितने जन्म-जन्मान्तर तक नरक में वास करना होगा" यह कहकर महाराजा अग्रसेन ने शूरसेन को आदेश दिया कि "इस हिंसामय यज्ञ को बन्द करो इसी में हमारा भला है।"

शूरसेन ने विनय पूर्वक महाराजा से निवेदन किया कि "हे दुखियों पर दयालु, मेरे वचन को सुनो, अब केवल एक यज्ञ शेष रहा है, उसे पूर्ण कर लें, यही अच्छा है। इसके पश्चात् हिंसामय यज्ञ मत करना, यह मेरी सम्मति है। यज्ञ का समय टल रहा है इसलिए शीघ्र ही यज्ञ मंडप में पधारें।"

इस पर महाराजा ने शूरसेन को समझाया कि तुम समझदार होकर भी ऐसी बात मुझे कहते हो। मनुष्य को जहां तक भी हो सके पाप कर्म से बचना चाहिए। जितना ही वह पाप कर्म से बचेगा उतना ही उसका कल्याण होगा। पशु हिंसा बड़ा पाप है। तुम्हें मेरी बात मान कर प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हमारे वंश में कोई हिंसा न करेगा।

महाराजा की धर्मानुकूल आज्ञा से प्रभावित होकर शूरसेन के मन में भी हिंसा के प्रति घृणा हो गई। दोनों भाई राजमहल से चलकर यज्ञस्थल पर पहुंचे। पण्डितों के आदेश से महाराजा ने सिंहासन ग्रहण किया और अपने सभी पुत्र-पुत्रियों तथा परिवार के अन्य सभी सदस्यों को अपने पास बैठाया और सभी उपस्थित जनों को सम्बोधित कर बोले :—

अहं स्वभ्रातृन पुत्रांश्च तथा क्रत्या कुटुम्बिन।
इदमेवोपदिशामि न कश्चिद्वधमाचरेत ॥

यज्ञ में पशु हिंसा से मेरे मन में घृणा उत्पन्न हो गई है, मैं पशु हिंसा को उचित नहीं समझता। अतः मैं अपने सभी भाई, पुत्रों, पुत्रियों तथा कुटुम्बियों को उपदेश देता हूं कि कोई भी हिंसा न करे।

विचार परिवर्तन का प्रभाव

महाराजा अग्रसेन के इस विचार परिवर्तन का वैश्य जाति के जीवन पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। यही कारण है कि वैश्यमात्र में अहिंसा, निरामिष भोजन, दया, धर्म और सदाचार वंश परम्परागत प्रचलित हैं।

अग्रोहा और आगरा की स्थापना

महाराजा अग्रसेन ने वैश्य जनपद को सुदृढ़ बनाने के लिए वैश्य गण राज्य की स्थापना की ओर अग्रोहा बसाकर उसको इस गण राज्य की राजधानी बनाया। आगे चलकर वही वैश्य जनपद अग्रोहा गण राज्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

महाराजा अग्रसेन ने जब अग्रोहा की स्थापना कर ली तो अपने गण राज्य के पूर्वी भाग के प्रबन्ध और सुसंचालन के लिए अग्रपुर [आगरा] नगर बसाया और उसका प्रबन्ध अपने भाई शूरसेन के हाथ सौंप दिया। ऐसा उरुचिरतम् में वर्णित है। किन्तु आगरा में अग्रवालों की जितनी संख्या है और उनकी जैसी धारणा है, ऐसा लगता है कि यह नगर महाराजा अग्रसेन के बाद उनके पुत्र विभु ने बसाया है। आज दिन आगरा शहर और आसपास के क्षेत्र में अन्य शहरों और स्थानों की अपेक्षा अग्रवालों की सर्वाधिक संख्या है। कहते हैं कि विभु ने अग्रपुर नाम से इस नगर को बसाया था और आज दिन यह आगरा नाम से प्रसिद्ध है।

वैश्यों का जैन धर्म में प्रवेश

महाभारत युद्ध के पश्चात मुनि वेद व्यास जीवित रहे और उन्होंने महाभारत ग्रन्थ में वैश्यों के लिए कर्म निर्धारित करते समय अपने पूर्ववर्ती स्मृतिकारों की परम्परायें तोड़ डालीं और **'कृषि गौरक्षा वाणिज्यम् वैश्य धर्म स्वभावजम्'** की सामान्य व्यवस्था के साथ-साथ

निर्णय दिया कि :—

वाणिज्या पशुरक्षा च कृष्या दान रतिः शुचिः ।
वेदाध्ययनसम्पन्नः स वैश्य इति संश्रुति ।।

अर्थात् व्यापार, पशुरक्षा, कृषि कार्य करते हुए दान देने में तत्पर और पवित्रता के साथ वेदाध्ययन सम्पन्न वैश्य ही वैश्य कहलाने का अधिकारी है ।

कालान्तर में देश में वाम मार्ग प्रचलित हो गया, लोग वैदिक धर्म की मर्यादाओं से दूर हट गए, सर्वत्र हिंसामय वातावरण फैल गया । अतः उस दूषित वातावरण से मुक्ति हेतु देश में जैन धर्म का प्रचार आरम्भ हुआ । अग्रोहा के तत्कालीन राजा दिवाकर के काल में जैन मुनि लोहाचार्य जी ने अग्रोहा में प्रचार यात्रा की और राजा दिवाकर को जैन धर्म में दीक्षित किया । वैसे भी वैश्य वाम मार्ग तथा हिंसामय वातावरण से तृषित थे अतः बहुत से वैश्यों ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया । किन्तु उनके खान-पान और बेटी विवाह सम्बन्ध वैदिक धर्मावलम्बी वैश्यों के साथ यथापूर्व चलते रहे ।

अग्रोहा से पलायन

सन ३२६ ई० पूर्व भारत पर विदेशी आक्रमण आरम्भ हो गए और अग्रोहा भी इन आक्रमणों की चपेट में आता रहा किन्तु ११९४ ई० में शाहबुद्दीन गौरी के आक्रमण के समय तो यह पूरी तरह उजड़ गया और सभी अग्रोहा निवासी अग्रोहा छोड़कर राजस्थान के शेखावाटी तथा हरियाणा के अन्य क्षेत्रों में जा बसे ।

अग्रोतकान्वय (अग्रोहा कुल के) वणिक

अग्रोहा छोड़ने के पश्चात वे जहां गये अपने साथ **'अग्रोतकान्वय' 'वणिक'** तथा **'गोत्र'** ये तीन शब्द ले गए । किसी को अपना परिचय देते या लेखबद्ध कराते तो अपने आपको 'अग्रोतकान्वय वणिक' बताते और

अपने गोत्र का उच्चारण करते थे । इसके प्रमाण में सम्वत् ११८९ विक्रमी में कविवर श्रीधर ने स्वकृत **'पासणाहं चरिउ'** में इस रचना के प्रेरणा सूत्र श्री नट्टल साहु का जाति परिचय देते हुए उन्हें **'अग्रोतकान्वय'** बताया है और अपना परिचय देते हुए लिखा है कि अगरवाल कुल में मां वील्हा के गर्भ से उत्पन्न हुए । सम्वत् १३८४ वि० के एक शिला लेख के उल्लेख (लाल किले के अजायब घर में पुराने कैटेलोग में नं० बी-६ अब यह नम्बर बदल गया है और अब यह शिला लेख नैशनल म्यूजियम में है) में "वाणिजामग्रोतक निवासिना" (अग्रोतक निवासी वणिक) शब्द का प्रयोग हुआ है । सम्वत् १४११ विक्रमी में प्रद्युम्न चरित्र काव्य के रचनाकार श्री सधारु ने अपना परिचय देते हुए अपने आपको अगरवाल लिखा है । सम्वत् १८८१ विक्रमी में एक शिला लेख में अग्रोतकन्वय गोयल गोत्र का उल्लेख है । (एपिग्रेफिक इण्डिया का भाग २ पृष्ठ २४३)

इसी प्रकार के अनेकों प्रमाण मैंने अपनी पुस्तक 'अग्रोतकान्वय' (अग्रवाल वैश्य जाति का इतिहास) में विस्तार से दिए हैं जिनसे सिद्ध है कि अग्रोहा छोड़ने पर हम अपने आपको 'अग्रोहाकुल' का वैश्य, गोयल गोत्रीय [या जो भी जिसका गोत्र था] या अग्रवाल कहते थे ।

जैसे-जैसे मुस्लिम शासन भारत में अपनी जड़ जमाता गया, हम अपने आपको 'अग्रोतकान्वय वणिक' कहना भूल गए । केवल शिला लेखों, पत्रों आदि में यह शब्द प्रचलित रहा । राज्य की ओर से हमें **"बक्काल"** नाम दिया गया जिससे हमारा उद्धार सन् १९०१ की जनगणना के समय अखिल भारतीय वैश्य महासभा, मेरठ के प्रयत्नों से हुआ और एक बार पुनः हमें सरकारी कागजों में वैश्य लिखा गया ।

वैश्य और अग्रवाल शब्दों का प्रचलन

एक ओर सन् १८९२ ई० में अखिल भारतीय वैश्य महासभा, मेरठ के प्रयत्नों से ब्रिटिश सरकार पर जोर डाला गया कि हमें बनिया या बक्काल न लिखकर वैश्य लिखा जाय दूसरी ओर इससे पूर्व भारतेन्दु

बाबू हरिश्चन्द्र ने सन् १८७१ [सं० १८२८ वि०] में सर्वप्रथम 'अग्रवालों की उत्पत्ति' नामक पुस्तक लिखकर अग्रवाल शब्द का प्रचार किया और 'अग्रोहाकुल के वैश्य' शब्द के स्थान पर 'अग्र का बालक' (अग्रवाल) जनता में प्रचारित किया। अतः १८९० तक अग्रवाल शब्द प्रचलित हो चुका था और सन् १८९० ई० में सबसे पहले 'सभाये आजम' नाम से एक सभा की स्थापना खुर्जा में हुई, जो सन् १९०९ तक जीवित रही। तत्पश्चात् अग्रवाल नाम सर्वत्र प्रचलित हो गया यद्यपि आगरा और उसके आस पास 'अगरवारे' शब्द का प्रचार था।

अग्रवालों के गोत्र

इस प्रकार हम देखते हैं कि सन् १८८० के पश्चात् अन्य वैश्यों से पृथक् होकर अग्रवाल नामक वैश्यों का अलग वर्ग बन गया जिसमें आज दिन तक १८ गोत्र प्रचलित हैं। जैसे कि हम इससे पूर्व बता चुके हैं कि इन गोत्रों के अधिकाँश रूप अपभ्रंश पाये जाते हैं। जिन गोत्रों की अग्रवालों में इतनी मान्यता है उनके इतने विकृत रूप कैसे मिलते हैं, इस सन्दर्भ में हमें गोत्रोत्पत्ति का सिंहावलोकन करना होगा और गोत्रों के उद्गम स्थान का पता लगाना होगा। यह तो बहु प्रतिपादित है कि हमारे गोत्र महाराजा अग्रसेन की सूझ-बूझ का परिणाम हैं। उन्होंने 'अग्रोहाकुल के वैश्यों' की मर्यादा रखने, भाई-भाई को परस्पर विवाह से बचाने और एक कुटुम्ब अपने से भिन्न कुटुम्ब में विवाह करे तथा सभी कुटुम्बों में पारस्परिक प्रेम भाव बढ़ाने की भावना से गोत्रों का वैश्य जाति में प्रचलन कराया।

जैसा कि हम पूर्व उल्लेख कर चुके हैं, महाराजा अग्रसेन ने ब्राह्मणों द्वारा उत्पन्न वैश्यों की हीनावस्था से उन्हें मुक्त कराने का हर प्रयत्न किया था अतः ब्राह्मणों की भांति वैश्यों के भी गोत्र हों और वैश्यों पर भाई-बहिन में पारस्परिक विवाह का दोष न लगे, अग्रोहा के १८ कुलों को १८ गोत्र मुनियों द्वारा दिलाए। इसके लिए उन्होंने १८ यज्ञों का

आयोजन किया। प्रत्येक दिन १८ गण प्रतिनिधियों में से बारी-बारी से एक-एक यज्ञ का यजमान बनता था और जो मुनि यज्ञ का पुरोहित बनता था उसी का गोत्र यजमान को मिल जाता था। इस प्रकार महाराजा अग्रसेन का निज गोत्र गर्ग मुनि के नाम से मिला और अन्य १७ गोत्र १७ गण प्रतिनिधियों को मिले जिनकी सूची आगे दी जायेगी। अब हम गोत्रों के आदि स्रोत का पता लगाने का प्रयत्न करते हैं।

गोत्रों का उदय

अग्रवालों में १८ गोत्रों का बड़ा महत्व है। प्रत्येक संस्कार के समय तथा वैवाहिक अवसरों पर गोत्रों का उच्चारण आवश्यक माना जाता है। अब तक प्रचलित प्रणाली के अनुसार सगोत्रीय दो परिवारों में विवाह सम्बन्ध नहीं हो सकते।

किन्तु अग्रवालों में गोत्रों का इतना महत्व होते हुए भी जितना अज्ञान पाया जाता है और गोत्रों के नामों को जितना बिगाड़ा गया है उतना अन्यत्र नहीं है। अतः अब तक हम अग्रवालों के गोत्रों पर विचार करने से पूर्व गोत्रों के आदि स्रोत पर विचार करते हैं।

मूलगोत्राणि चत्वारि समुत्पन्नानि भारत।
अंगिरा कश्यपश्चैववशिष्ठो भृगुरेव च॥

(महाभारत, शांतिपर्व, अध्याय २९८)

इसमें गोत्रों के प्रवर्तक केवल चार ऋषियों को माना गया है और इन्हीं के मूल रूप से चार गोत्र माने गए हैं।

१. अंगिरा मुनि से अंगिरस गोत्र
२. वशिष्ठ मुनि से वशिष्ठ गोत्र
३. कश्यप मुनि से कश्यप गोत्र
४. भृगु मुनि से भृगु गोत्र

ये चारों ही ऋषि आर्य जाति की सूर्य वंशी शाखा के ऋषि थे और मनु के उस प्रथम दल के सदस्य थे जिन्होंने देव दानव युद्ध से तंग आकर भारत भूमि को बसाया और इसे आर्यावर्त नाम दिया था।

जब आर्यों की संख्या बढ़ी और आर्यों की दूसरी शाखा चन्द्रवंशी

दल ने आर्यावर्त में प्रवेश किया तो उस समय ऋषि संख्या वृद्धि के साथ-साथ गोत्रों की संख्या बढ़ी और बोधायन के अनुसार सप्त ऋषि— १. जमदग्नि २. भारद्वाज ३. विश्वामित्र ४. अत्रि ५. गौतम ६. वशिष्ठ ७. कश्यप तथा आठवें अगस्त्य का नाम जोड़कर आठ गोत्र प्रचलित हो गए।

बोधायन ने इन्हीं ऋषियों को आठ गोत्रों का कारण अर्थात् निर्माता माना है :

जमदग्नि भारद्वाजो विश्वामित्रऽत्रि गौतमौ।
वशिष्ठ कश्पाऽगस्त्या मुनयो गोत्र कारिणा ।।

इस प्रकार प्रारम्भ में प्रचलित ४ मूल गोत्रों के ऋषियों एवं बोधायन द्वारा उल्लिखित आठ ऋषियों के नामों में जो अन्तर है वह इस प्रकार है :—

१. चार मूल गोत्रों के भृगु ऋषि के स्थान पर उनके वंशज जमदग्नि का नाम लिया गया है।

२. अंगरिस के स्थान पर उनके दो पौत्र [१] गौतम तथा [२] भारद्वाज के नाम लिए गए हैं।

३. अत्रि, विश्वामित्र और अगस्त्य तीन नए नाम बढ़ाए गए हैं। इस प्रकार आदि काल के ब्राह्मणों के ८ गोत्र इस प्रकार निर्धारित हुए—जमदग्नि, भारद्वाज, विश्वामित्र, अत्रि, गौतम, वशिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य। आगे चलकर इनके अतिरिक्त मुद्गल, कात्यायन, वात्सायन जैमिनि, पतंजलि, याज्ञवलक्य, शांडिल्य, पाराशर, कौशिक आदि गोत्र और प्रचलित हो गये तथा यह संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई।

अतः गोत्रों की हजारों में बढ़ती संख्या के कारण गोत्रों के स्थान पर प्रवरों का प्रचलन आरम्भ हुआ जिनकी संख्या ५० से अधिक न थी।

ब्राह्मणों के प्रचलित गोत्रों में प्राचीन चार गोत्र और बोधायन द्वारा उल्लिखित ८ गोत्रों में बहुत कम अन्तर आया है और गोत्रों में कोई अशुद्ध रूप तो आ ही नहीं पाया है।

ब्राह्मणों में पंच गौड़ का भेदभाव उत्पन्न होने पर गौड़ ब्राह्मणों के गोत्र यथापूर्व हैं :—

१. भारद्वाज २. कौशिक ३. वशिष्ठ ४. कश्यप ५. गौतम।

आज दिन ब्राह्मणों के प्रचलित गोत्रों के अतिरिक्त १. तिवारी २. उपाध्याय ३. पचौरी ४. तेनगुरियां ५. शुक्ल ६. पाण्डेय ७. मिश्र ८. दीक्षित आदि पारिवारिक गोत्र प्रचलित हैं किन्तु ये गोत्र न होकर अल्ल हैं। इन अल्लों का ऋषियों के नामों से सम्बन्ध नहीं फिर भी इनके नाम भद्दे और निरर्थक नहीं हैं।

अग्रवालों के अठारह गोत्र

अग्रवालों के गोत्रों की संख्या १८ होते हुए भी कालभेद, स्थान-भेद और अज्ञान के कारणों से गोत्रों के ३२ रूप हो गए हैं।

१. गर्ग, गरग, गर। २. गोयल, गोइल, गोभिल, गहिल। ३. गौतम गौइन, गोयन, गौन। ४. गावाल, गाल, ग्वाल, गरवाल, गवन। ५. कासिल, कंसल, कांसल। ६. कंछल, कांछल, कुच्छल, कचहल, कश्यप। ७. कौसिल, कौसल, कौशिक। ८. सिहल, सिंगल, सींगल सेंगल, सहगल। ९. बिंदल, बुंगल। १०. बांसल, बांशल, बाँसिल, बंसल, वासिल, वात्सिल, वात्सल्य। ११. मित्तल, मीतल, मैत्रेय। १२. जिंदल, जीतल, जींदल। १३. मंगल, मंडल, मिंदल, मांगल। १४. मृद्गल, मुग्दल, मधुकल, मौगिल। १५. मैथल। १६. माण्डव्य। १७. भदल, भद्दल, भन्दल। १८. तंगल, तांगल, तिंगल, तुंगल, तुन्दल, तुन्दिल, १९. तित्तिल, तित्तल। २०. तायल, ताइल, तैतरेय, तांडय। २१. ऐरण, ऐरन, एरन, येरन, औरन। २२. टींगल, टींगण, ढिंगल, टेरन, टेलण, ढरन, ढालन, टेरण, ढेलन, ढैलन, तैर, तैरन, धैरन, धरैन, टेहलन। २३. नागल, नागिल, नागेन्द्र। २४. इन्दल, एडिल। २५. रैंगिल,। २६. नितुन्दन। २७. रंगिल। २८. जावाही। २९. मोहन। ३०. जैमिनी,। ३१. धान्याश। ३२. महवार।

अठारह गोत्र तथा उनके शुद्ध रूप

उपर्युक्त ३२ गोत्रों की सूची में से ही आज सर्वाधिक प्रचलित १८ गोत्र निम्न प्रकार हैं और उनमें शुद्ध रूपों के प्रस्तावित सुझाव भी दिये जाते हैं :—

प्रचलित गोत्र	शुद्ध रूप	प्रचलित गोत्र	शुद्ध रूप
१. गर्ग	गर्ग	१०. ऐरण	उरु, और्व
२. गोयल	गोभिल	११. धारण	धोम्य
३. गौयन	गौतम	१२. मधुकुल	मुद्गल
४. बंसल	वात्सल्य	१३. बिन्दल	वशिष्ठ
५. कंसल	कौशिक	१४. मित्तल	मैत्रेय
६. सिंगल	शांडिल्य	१५. भन्दल	भारद्वाज
७. मंगल	मांड्व्य	१६. तायल	तैत्तिरेय
८. जिंदल	जैमिनी	१७. कुच्छल	कश्यप
९. तिंगल	तांड्य	१८. नाँगल	नगेन्द्र

अब समय आ गया है कि जिस प्रकार अब हम अपने बच्चों के नाम सार्थक एवं कर्णप्रिय रखते हैं उसी प्रकार अपने गोत्रों के नामों का भी शोधन करके प्रचलित गोत्रों को ऋषियों के नाम के आधार पर ही रखें, ऐसा मेरा सुझाव है। इस बात की शंका न की जाए कि अमुक गोत्र तो ब्राह्मणों से मिलता है। वास्तव में तो ब्राह्मणों, वैश्यों और क्षत्रियों के गोत्र मुनियों के नामों से ही लिए गए हैं और मुनियों द्वारा ही उनकी शक्ति जहां जहां भी गई, उन वर्णों को गोत्र मिले थे अतः ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों के गोत्रों में समानता स्वाभाविक है।

गोत्रों का परिपालन आवश्यक

गोत्रों का परिपालन ही तो अग्रवाल जाति की एक बड़ी विशेषता है। विवाह के अवसर पर गोत्र के उच्चारण द्वारा पिता पुत्र को गोत्र

सौंपता चला जा रहा है। अतः यह कड़ी आज से ५१३२ वर्ष से सुरक्षित चली आ रही है। मैं तो यहां तक कहने को तैयार हूं कि जो वैश्य अपने गोत्र भूल गए हैं या अशुद्ध गोत्रों को ग्रहण किए हुए हैं वे पुनः यज्ञ कराके अपने गोत्र ग्रहण कर लें और आगे सगोत्र विवाह से बचें।

याज्ञवल्क्य स्मृति में वैवाहिक प्रकरण में लिखा है कि निरोग, भ्राता वाली, असमान ऋषि गोत्र की और माता की पांच तथा पिता की सात पीढ़ी दूर की कन्या से विवाह करना चाहिए।

(याज्ञवल्क्य स्मृति श्लोक ५२)

यहां समान ऋषि गोत्र बचाने का स्पष्ट आदेश है। यहीं तक नहीं अपने से भिन्न गोत्र में विवाह करने की अवस्था में भी यह आवश्यक है कि अपनी माता की ५ तथा पिता की ७ पीढ़ी की कन्या से विवाह न करें। सुधार के नाम पर गोत्रों का परित्याग शोभनीय या लाभप्रद नहीं है। फिर गोत्रों के पालन में कोई कठिनाई भी नहीं होती क्योंकि आज तो अग्रवालों की संख्या एक करोड़ से ऊपर है जबकि आज से लगभग ५१३२ वर्ष पूर्व अग्रोहा के अठारह गण प्रतिनिधियों को महाराजा अग्रसेन ने उनके कुटुम्ब की पहिचान के लिए १८ गोत्र दिखाए थे, उस समय अग्रोहा की जनसंख्या एक लाख वैश्य घरों की थी। अतः बढ़ती हुई संख्या में तो गोत्र बचाकर विवाह की पुरानी परिपाटी की रक्षा करना और भी सरल है और स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छी बात है।

आज दिन अग्रवालों ने जहां गोत्रों के अधिकांश अशुद्ध रूप धारण किए हुए हैं, इसके साथ एक भ्रम यह भी फैला हुआ है कि महाराजा अग्रसेन के १८ पुत्र थे और उनके गोत्र ही अग्रवालों के १८ गोत्र हैं। जो तनिक भी बुद्धि रखता है वह इसे मतिभ्रम ही कहेगा। आज प्रचलित प्रणाली के अनुसार एक पिता से चाहे कितने भी पुत्र हों सभी का गोत्र एक ही होता है, अलग-अलग नहीं। यदि महाराजा अग्रसेन के १८ पुत्रों के १८ गोत्र होते तो सगोत्र विवाह न होते हुए भी एक भाई दूसरे भाई की कन्या से विवाह के दोष से कैसे बच सकता है? साथ ही यदि एक

भाई की कन्या का दूसरे भाई के पुत्र के साथ (भिन्न गोत्र होने पर) विवाह हो सकता है तो फिर गोत्रों की आवश्यकता ही क्या है? इस सम्बन्ध में कुछ भाई मेरी इस शंका का समाधान इस प्रकार करते हैं कि सृष्टि के प्रारम्भ में तो सभी भाई बहिन ही तो थे। किन्तु ये समाधानकर्ता यह भूल जाते हैं कि सृष्टि के प्रारम्भ में जो मानव सृष्टि हुई थी यह पृथ्वी के गर्भ से अमैथुनिक सृष्टि थी। अतः उस समय उत्पन्न स्त्री-पुरुषों में एक माता-पिता से उत्पन्न सन्तान जैसा भाई बहिन का रक्त सम्बन्ध न था, रक्त सम्बन्ध तो मैथुनिक सृष्टि के बाद प्रचलित हुआ। अतः इस समाधान के आधार पर महाराजा अग्रसेन के १८ पुत्रों के १८ गोत्र मानना तर्क संगत नहीं है।

अतः विवेकशील लोगों का मत यह है कि अग्रवालों में प्रचलित १८ गोत्र अग्रोहा के १८ कुलों के १८ गण प्रतिनिधियों के गोत्र हैं और प्रत्येक गोत्र एक कुटुम्ब का बोधक है।

महाराज अग्रसेन का निज गोत्र गर्ग था और यही एक गर्ग गोत्र महाराजा अग्रसेन के सभी पुत्रों का था। शेष १७ गोत्र अग्रोहा के अन्य १७ वैश्यगण प्रतिनिधियों के थे।

अन्तर-जातीय विवाह

समस्त अग्रवाल अपना निकास स्थान अग्रोहा मानते हैं किन्तु सभी अग्रवाल (केवल १ परिवार को छोड़कर, जो आज भी अग्रोहा में बसा है, जिसके आज १५ घर हैं और आबादी १०० के लगभग है, सभी मित्तल गोत्र के हैं) अग्रोहा के बाहर ही बसे हुए हैं। अतः इनमें प्रान्तीय वैवाहिक सम्बन्धों में विशेष अड़चन नहीं हैं। इस सम्बन्ध में महाराजा अग्रसेन का विवाह दक्षिण पश्चिम में बसे नागवंश की कन्याओं से हुआ था और वे स्वयं राजस्थान के पास के रहने वाले थे। उनके पुत्रों के विवाह भी नाग कन्याओं से हुए थे। अतः "दुहिता दूर हिता" की उक्ति के

अनुसार अन्तर प्रान्तीय विशेषकर वैश्य मात्र में वैवाहिक सम्बन्धों में कोई बाधा या जातीय बन्धन बाधक नहीं है।

महाराजा अग्रसेन द्वारा संचालित प्रणाली तथा अग्रवाल समाज

महाराजा अग्रसेन ने अग्रगण राज्य की स्थापना तथा अग्रोहा के निर्माण के साथ ही कुछ ऐसे कार्य किए जिनकी स्मृति, विशेष कर अग्रवाल समाज में और साधारणतया समस्त वैश्यों के लिए, गौरव की बात है एवं विचारणीय है :—

१. जिस स्थान पर अग्रोहा विद्यमान है, मरु प्रदेश है, जहां आज भी पानी का अभाव है। यह अभाव अग्रगण राज्य की स्थापना के समय और भी अधिक था। अतः पानी की समस्या की पूर्ति हेतु महाराजा अग्रसेन ने एक जलाशय बनवाया जो उन्हीं के नाम से 'अग्रोदक' प्रसिद्ध हुआ और इसी के नाम से राजधानी का नाम अग्रोहा पड़ा।

२. महाराजा अग्रसेन ने अपने समय में लगभग एक लाख वैश्य पविवारों का संगठन किया एवं अपने गण राज्य में प्रजातन्त्रात्मक समाजवाद की स्थापना की।

३. अग्रोहा गण राज्य के एक लाख वैश्य घर १८ कुटुम्बों में बंटे थे (महाराजा अग्रसेन के परिवार सहित) और इनके १८ गण प्रतिनिधि राज्य के संचालन के लिए उत्तरदायी थे। महाराजा अग्रसेन राज्य प्रमुख रूप में १८ गण प्रतिनिधियों के शिरमौर (गण पिता) थे।

४. महाराजा अग्रसेन १८ गण प्रतिनिधियों को पुत्रवत मानते थे और गण प्रतिनिधि उन्हें 'गण पिता' के रूप में मानते थे। इसलिए आजकल बहुत से अग्रवाल भाई भावुकता वश महाराजा अग्रसेन के १८ पुत्र बताते हैं। किन्तु उनकी यह भावना वस्तुस्थिति के बिल्कुल विपरीत है।

५. महाराजा अग्रसेन ने वैश्यों को एक सबल गण राज्य दिया।

१८ कुटुम्बों में भाई चारा और प्रेम भाव बनाए रखने के लिए उनको १८ गोत्र दिलाए, स्वगोत्र बचा कर वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कराके उन्हें आत्मीयता के बन्धन में बांध दिया।

६. महाराजा अग्रसेन ने वैश्यों में वेदाध्ययन एवं यज्ञ प्रथा को पुनर्जीवित करने के लिए १८ यज्ञ कराए और उस समय प्रचलित यज्ञ में पशुबलि की प्रथा बन्द की।

६. साथ ही अपने १८ गण प्रतिनिधि एवं परिवारी जनों को अमर उपदेश दिया :—

अहं स्वभ्रातृन पुत्रांश्च तथा कन्या कुटुम्बिनः।
इदमेवोपदिशामि न कश्चिद्वधमाचरेत ॥

अर्थात् मैं अपने भाई, पुत्रों, कन्याओं तथा कुटुम्बियों को यही उपदेश देता हूं कि वे हिंसा न करें।

८. महाराजा अग्रसेन ने अपने गण राज्य में समाजवाद का एक ऐसा स्वस्थ्य उदाहरण प्रस्तुत किया जिस पर कोई भी समाज, देश या जाति गर्व कर सकती है और वह था १ रुपया और १ ईंट। जो भी वैश्य अग्रोहा जाकर बसता था उसे अग्रोहा निवासी एक रुपया और एक ईंट देकर लखपति तथा हवेली का मालिक बना देते थे और वह समानता के आधार पर गण राज्य का सदस्य बन जाता था। महाराजा अग्रसेन की यह समाजवादी भावना उन के पुत्र विभु ने भी प्रचलित रखी।

महाराजा अग्रसेन की उपर्युक्त आठों व्यवस्थाएं आज किसी भी समाज तथा देश का मार्ग दर्शन करने में समर्थ हैं और उसे बहुत ऊंचा उठा सकती हैं। आज समाजवादी समाज का जो नारा सर्वत्र गूंज रहा है, सर्वप्रथम इससे अच्छा **"समतावादी समाज"** का निर्माण महाराजा अग्रसेन ने किया।

वर्तमान युग की पुकार

महाराजा अग्रसेन की भावनानुसार देश के समस्त वैश्यों का संगठन,

विस्मृत गोत्रों का पुनरुद्धार, वेदाध्ययन और यज्ञों का प्रचलन सार्वजनिक हित के लिए कुएं तथा जलाशयों का निर्माण, समस्त वैश्य जाति में यह भावना भरना कि अग्रोहा न केवल अग्रवालों का है अपितु समस्त वैश्यों के लिए तीर्थ स्थान है तथा समस्त वैश्यों में संगठन की भावना का प्रचार समाज और देश के हित में है। ऐसा करके हम अग्रवाल समाज का विशेष रूप से तथा वैश्य समाज का व्यापक रूप से हित करेंगे। महाराजा अग्रवाल के कृतित्व आज के समाज के लिए प्रकाश स्तम्भ का कार्य कर सकते हैं। अतः आज हम युग की पुकार सुनें और समय के अनुसार उन पर ऐसा आचरण करें कि :—

"युग मुक्त कण्ठ से कहे मैं तो बदल गया।
तुम पृष्ठ क्यों न खोल दो इतिहास का नया॥
छोड़ो पुरानी रूढ़ियाँ देखो नवीन रंग।
पिछड़े हुए स्वजाति बन्धुओं को लेके संग॥"

अखिल भारतीय अग्रवाल महासभा (पंजीकृत)

देहली-३२

सेठ जमनालाल जी बजाज द्वारा सन् १९१८ में संस्थापित)
अध्यक्ष-श्री जे० आर० जिन्दल, मन्त्री-श्री बाबूलाल सलमे वाले
महामंत्री-वैद्य निरंजनलाल गौतम कोषाध्यक्ष-श्री सीताराम गुप्त

के

गौरवशाली इतिहास की एक झलक

महासभा के अधिवेशनों द्वारा हुये कार्यों का परिचय :—

(१) प्रथम अधिवेशन:—सन् १९१८ ई० में श्री जमनालाल बजाज द्वारा वर्धा में स्थापना। अध्यक्ष—श्री खेमराज श्रीकृष्ण दास जी विशेषता—मारवाड़ी अग्रवाल समाज को संगठित करने का प्रयत्न।

(२) द्वितीय अधिवेशन:—सन् १९१९ ई०, स्थान बम्बई, अध्यक्ष—श्री. राम लाल जी गनेरीवाल। विशेषता—राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी जी इस अधिवेशन में सम्मिलित हुए और उन्हें ५० हजार रुपए का दान हिन्दी प्रचार हेतु दिया।

(३) तृतीय अधिवेशन:—सन् १९२० ई०, स्थान कलकत्ता, अध्यक्ष—श्री नवरंग राय जी खेतान। विशेषता—राजनीति में सक्रिय भाग लेने का निर्णय तथा "अग्रवाल" पत्रिका का प्रकाशन।

(४) चतुर्थ अधिवेशन :—सन् १९२१, स्थान इन्दौर, अध्यक्ष—श्री प्रताप जी सेठ। विशेषता प्रान्तीय—अग्रवाल सभायें संगठित करने का निर्णय।

(५) पाँचवां अधिवेशन:—सन् १९२२ ई०, स्थान झरिया, अध्यक्ष-

श्री मेलाराम जी वैश्य भिवानी निवासी। विशेषता—अग्रवाल विधवाश्रम की स्थापना, अग्रवाल जाति का इतिहास लिखाने का निर्णय एवं बालविवाह पर प्रतिबन्ध।

(६) छठा अधिवेशन :—सन् १९२३, स्थान कानपुर, अध्यक्ष—बम्बई के समाज सेवी सेठ आनन्दीलाल जी पौद्दार। विशेषता—समाज की व्यापारिक तथा आर्थिक नीति पर विशेष ध्यान दिया गया।

(७) सातवां अधिवेशन:—सन् १९२४, स्थान फतेहपुर (जयपुर) अध्यक्ष—बम्बई के सेठ शिवनारायण जी नेमानी, विशेषता—समस्त अग्रवालों के साथ रोटी-बेटी के व्यवहार का निर्णय।

(८) आठवां अधिवेशन:—सन् १९२६, स्थान दिल्ली, अध्यक्ष—परम देशभक्त सेठ जमनालाल बजाज, विशेषता—अग्रवाल महिलाओं को महासभा में प्रतिनिधि बनाने का निर्णय।

(९) नवां अधिवेशन:—सन् १९२७, स्थान कलकत्ता, अध्यक्ष—बम्बई के सेठ केशव देव जी नेवटिया। विशेषता—विधवा विवाह का सर्व प्रथम समर्थन किया गया।

(१०) दसवां अधिवेशन:—सन् १९२८, स्थान बम्बई, अध्यक्ष—सेठ रंगीलाल जी जाजौरिया। विशेषता—पुरानी पीढ़ी से टकराव टाल कर आगे बढ़ने का निर्णय।

(११) ग्यारहवां अधिवेशन.—सन् १९२९, स्थान अजमेर, अध्यक्ष—सेठ गोविन्ददास जी पित्ती। विशेषता—विधवा विवाह के समर्थन के निर्णय की सम्पुष्टि।

(१२) बारहवां अधिवेशन:—सन् १९३०, स्थान उज्जैन, अध्यक्ष—श्री बा० देवीप्रसाद जी खेतान, विशेषता—देश भर के सभी प्रकार के अग्रवालों के लिए महासभा के द्वार खोलने का निर्णय।

(१३) तेरहवां अधिवेशन:—सन् १९३१, स्थान कलकत्ता, अध्यक्ष—लाहौर निवासी श्री ला० फकीरचन्द जी एडवोकेट। विशेषता—सर्वप्रथम देशवासी सभी अग्रवालों ने इस अधिवेशन में भाग लिया।

(१४) चौदहवां अधिवेशन:—सन् १९३२, स्थान लाहौर, अध्यक्ष-परम देशभक्त श्री पद्मराज जी जैन। विशेषता—विधवा विवाह में बाधा न डालने का निर्णय।

(१५) पन्द्रहवाँ अधिवेशन:—सन् १९३३, स्थान इलाहाबाद, अध्यक्ष – कलकत्ता के परम सुधारक श्री वसन्तलाल जी मुरारका। विशेषता—विधवा विवाह का पुन: समर्थन व्यक्त।

(१६) सोलहवां अधिवेशन:—सन् १९३४, स्थान जबलपुर, अध्यक्ष-विश्वमित्र दैनिक पत्र कलकत्ता के संचालक श्री मूलचन्द जी अग्रवाल। विशेषता—विधवा विवाह का पुन: समर्थन एवं सामाजिक क्रांति का सिंहनाद।

(१७) सत्रहवां अधिवेशन:—सन् १९४८, स्थान दिल्ली, अध्यक्ष-आचार्य जुगल किशोर जी। विशेषता—अग्रोहा के पुनर्निर्माण का निश्चय।

(१८) अठारहवां अधिवेशन:—सन् १९५०, स्थान अग्रोहा, अध्यक्ष श्री कमल नयन जी बजाज, विशेषता—विधवा विवाह को सामयिक और उचित ठहराया गया तथा अग्रोहा में अग्रसेन इन्जीनियरिंग एण्ड टैक्नीकल कालेज स्थापित करने का निर्णय।

(१९) उन्नीसवां अधिवेशन:—सन् १९५३, स्थान नागपुर, अध्यक्ष – श्री ईश्वर दास जी जालान, विशेषता—पर्दा प्रथा एवं दहेज प्रथा के विरुद्ध प्रस्ताव पारित।

(२०) बीसवाँ अधिवेशन :—सन् १९६८, स्थान देहली, अध्यक्ष—श्री जे० आर० जिन्दल, विशेषता—अग्रोहा निर्माण कार्य, एवं

अग्रोहा तीर्थ मासिक पत्रिका संचालन, और कुरीति निवारण का प्रयत्न।

(२१) इक्कीसवाँ अधिवेशन :—सन् १९७२, स्थान दिल्ली, अध्यक्ष श्री जे० आर० जिन्दल, विशेषता—अग्रोहा में अग्रसेन इन्जीनियरिंग एण्ड टैक्नीकल कालेज की स्थापना हेतु प्रयत्न एवं संगठन कार्य।

समाज की परिवर्तित परिस्थितियों में महासभा के सम्मुख कुरीति निवारण एवं समाज सुधार का कार्य बढ़ जाने के कारण महासभा का ध्यान इस ओर ही केन्द्रित रहा।

सन् १९७५ में इस महासभा के ही एक कार्यकारिणी सदस्य श्री रामेश्वरदास जी गुप्त ने इस महासभा से अलग होकर "अखिल भारतीय अग्रवाल सम्मेलन" के नाम से पृथक संस्था का निर्माण कर लिया। अत: महासभा अपनी पुरानी नीति के अनुसार पारस्परिक संघर्ष से बचते हुये नवगठित सम्मेलन को अपना भरसक योगदान दे रही है।

सन् १९७६ ई० में महासभा की एक इकाई आग्रोहा इंजीनियरिंग एण्ड टैक्नीकल कालेज सोसाइटी की ओर से अ० भा० अग्रवाल सम्मेलन द्वारा गठित अग्रोहा विकास ट्रस्ट को २३ एकड़ भूमि निःशुल्क देकर अग्रोहा निर्माण कार्य में विशेष योगदान दिया। आज इसी २३ एकड़ भूमि पर अग्रोहा निर्माण का कार्य चल रहा है।

यत: गत १९७६ से अखिल भारतीय अग्रवाल सम्मेलन की पूर्ण शक्ति अग्रोहा निर्माण कार्य में लग गई है अत: लम्बे विचार-विमर्श के पश्चात् इस महासभा ने अपने पूर्ववर्ती समाज सेवी कार्यकर्त्ताओं की नीतियों का अनुसरण करते हुए समाज सुधार और समाज सेवा के कार्यों को गति देने के लिए अपनी पूर्व परम्पराओं के अनुरूप इस वर्ष के लिए महासभा ने निम्नांकित सेवा कार्य प्रारम्भ किये हैं—

१—महासभा के पूर्व गौरव को प्राप्त करने के लिये अखिल भारतीय स्तर पर सदस्यता अभियान द्वारा समाज संगठन।

२—विवाह योग्य अग्रवाल कन्याओं के लिए ऐसे सुयोग्य वरों की खोज

कर एक रजिस्टर में अंकित करके कन्याओं के ऐसे अभिभावकों तक पहुंचाना जो दहेज की बढ़ती मांग को पूरा करने में असमर्थ हैं और अपनी कन्याओं के विवाह नहीं कर पाते।

३—आजीविका की खोज में भटकते हुए अग्रवालों को आजीविका दिलाने में सहयोग।

४—राजकीय संकटों में फंसे निर्दोष अग्रवालों को कानूनी एवं अन्य प्रकार से यथासंभव सहायता देना और दिलाना।

५—देश के किसी भी भाग में, विशेषतः देहली में, अग्रवाल बन्धुओं के अटके हुये कार्यों को पूरा कराने में सहयोग।

६—असहायों की सहायता।

७—सुयोग्य अथवा अभावग्रस्त छात्रों को छात्रवृत्ति।

८—सामूहिक विवाहों को प्रोत्साहन।

वैद्य निरंजनल गौतम

महामन्त्री—अखिल भारतीय अग्रवाल महासभा (पंजीकृत)

७/२८, ज्वाला नगर, गौतम मार्ग,

शाहदरा, दिल्ली-३२

वैश्यों की प्रमुख शाखाएँ

इन्हें एक मंच पर लाना समय की पुकार है।

१ मारवाडी अग्रवाल २ देश वासिया (बीसा अग्रवाल)
३ महेमिये अग्रवाल ४ गुजराती अग्रवाल ५ मथुरिया अग्रवाल
६ मागधी अग्रवाल ७ मालवीय अग्रवाल ८ अवधी अग्रवाल
९ कन्नौजिया अग्रवाल १० दिलवालिया अग्रवाल ११ लोहिया अग्रवाल
१२ गिदौड़िया अग्रवाल १३ कदीमी वैश्य अग्रवाल १४ दस्सा अग्रवाल
१५ पंजा अग्रवाल १६ ढइया अग्रवाल १७ गुडाकू अग्रवाल
५८ वहत्तरिया अग्रवाल १९ राज वंशी अग्रवाल २० जैन अग्रवाल
२१ सिख अग्रवाल २२ अग्रहारी २३ गहोई २४ केसर वानी
२५ माथुर वैश्य २६ महावर २७ माहौरे (माहौर) २८ शिवहरे
२९ गुलहरे ३० जायसवाल ३१ चूरूवाल ३२ वर्णवाल
३३ खण्डेलवाल ३४ ओसवाल ३५ पुरवाल ३६ पदमावती
३७ पल्लीवाल ३८ टोकेवाल ३९ गोलवाल ४० गोयलवाल
४१ मौरत वाल ४२ कोल वार ४३ हलवार्र वैश्य (यज्ञ सेनी)
४४ मगेड़वाल ४५ महेश्वरी ४६ ढाके महेश्वरी ४७ पोकरे महेश्वरी
४८ डीडो महेश्वरी ४९ रस्तोगी (रौहतगी, रुस्गी) ५० वाष्णेय
(बारह सैनी) ५१ चतुर्श्रेणा (चौसेनी) ५२ गांधीरिघा ५३ झाकड़े
५४ नीमे ५५ कठूरा ६० नागर ६१ कुमारतन ६२ वाथम
६६ ओमर (ऊमर) ६४ अयोध्यावासी ६५ सम्मानीय
६६ मध्यदेशीय ६७ रोनियर ६८ हरिद्वारी ६९ चेट्टी ७० गांधी
७? शाह ७२ बनौधिया वैश्य। ७३ निवौधिया वैश्य। ७४. आर्य वैश्य

अग्रौतकान्वय

(अग्रवाल वैश्यजाति का इतिहास)

संशोधित एवं परिवर्धित

चतुर्थसंस्करण

शीघ्र ही छपने जा रहा है

पृष्ठ संख्या ५०० से अधिक

लेखक—वैद्यश्री निरंजन लाल गौतम

भूमिका लेखक—प्रो० कृष्ण दत्त बाजपेयी, अध्यक्ष-प्राचीन इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर।

□

तृतीय संस्करण की भाँति चतुर्थ संस्करण में भी अग्रवाल सभाओं के इतिहास प्रकाशित होंगे। आप भी अपनी अग्रवाल सभा का विवरण प्रकाशनार्थ भेजिये। विवरण पत्र हमसे मगालें।

अखिल भारतीय अग्रवाल परिचय ग्रन्थ

द्वितीय संस्करण

तैयार हो रहा है आप भी अपना परिचय प्रकाशनार्थ भेजें। परिचय विवरण-पत्र हमसे मंगा लें।

वैद्यश्री निरंजन लाल गौतम

महामंत्री

अखिल भारतीय अग्रवाल महासभा (पंजीकृत)

७/२८, ज्वाला नगर, गौतम मार्ग, शाहदरा दिल्ली-३२